A TO ZEE OF BHAKTI

तो आज का Session जो है, हालांकि unplanned है, but can be a very Historical Session क्योंकि आज का Session जो है, मैं एक अलग point of view से लेना चाहूँगा। आज का Session हम लेंगे "A to Zee of Bhakti" पर...

A to Z नहीं, A to Z तो गोपी भाव तक होता है।
A to Zee of Bhakti - 'मंजरी भाव' पर्यन्त।

तो जैसे कि हम जानते हैं कि जीव के जब आध्यात्मिक पुण्यों का संशय होता है, एकाग्र होते हैं, तो उसके ऊपर भगवत् कृपा विशेष होती है, और उसे भक्तों का संग प्राप्त होता है..., तो उसको भक्तों का संग प्राप्त होता है। सामान्यतः जो जीव होता है, वह अच्छा-बुरा करता रहता है और अपने कर्म अनुसार उसको व्यक्तियों का सम्बन्ध मिलता रहता है। पर जब भगवत् कृपा विशेष होती है, तो उसको भक्तों का सान्निध्य लाभ होता है, प्राप्त होता है। अब जब भक्तों का सान्निध्य प्राप्त होता है, तो व्यक्ति यह समझता है कि भाई अच्छे-बुरे कर्म नहीं करने चाहिए क्योंकि वास्तव में ये दोनों कार्य करके तो हम जन्म-मृत्यु के जँजाल में ही फँसे रहते हैं। धीरे-धीरे फिर जब जीव को वास्तविक साधु संग प्राप्त होता है, तो वह यह समझ पाता है कि इस दुनिया के परे भी एक और दुनिया है। उसे वैकुण्ठ जगत् कहा जाता है, वैकुण्ठ लोक हैं, अनेक-अनेक वैकुण्ठ लोक हैं। वहाँ पर विष्णुतत्व विराजमान् हैं। और उन सबके भी fountain head - अंशी, स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण हैं।

तो यह सब जब ज्ञान प्राप्त होता है, तो व्यक्ति पहले तो जन्म-मृत्यु से पार होने का सोचता है। उसके बाद जब पूरा ज्ञान प्राप्त होता है, तो व्यक्ति सोचता है - जन्म-मृत्यु पार होकर मैं वैकुण्ठ जा सकता हूँ, परन्तु धीरे-धीरे वह कृष्ण भगवान् के बारे में सुनता है, तो वह सोचता है यह तो सबसे सर्वश्रेष्ठ हैं, सबके अंशी हैं, सबके मूल कारण हैं, *सर्व कारण-कारणम्* हैं। तो व्यक्ति की कृष्ण प्राप्ति की इच्छा, अभिलाषा मन में जाग्रत होती है। नहीं तो क्या होता है? भगवत् प्राप्ति की अभिलाषा केवल।

जब हम, जब जीव कृष्ण के बारे में सुनता है, कृष्ण के लोक के बारे में, तो उसकी इच्छा जाग्रत होती है कि काश मुझे भी कृष्ण प्राप्ति हो सकती है। इससे पहले क्या होता है? कि भगवान् के बारे में हम सुनते हैं और यही बोला जाता है कि भगवत् दास बन सकते हो। फिर धीरे-धीरे जब हम श्रीकृष्ण के बारे में सुनते हैं, तो हमको यह समझ आता है कि हमारा भगवान् से सम्बन्ध केवल दास्य भाव में नहीं, इससे उन्नतर स्तरों पर भी हो सकता है। जैसे साख्य- कृष्ण के साथ हम उनके सखाओं की कथा सुनते हैं।

श्रीकृष्ण के सखा जो होते हैं, वो श्रीकृष्ण के ऊपर चढ़ते हैं, जब वे खेल में हार जाते हैं और लात मारते है, "एई, घोड़ा बनकर तेज चलो।" तो हम यह सोचते हैं कि ऐसा भी होता है भगवान् के साथ?

फिर हम सुनते हैं कि भगवान् की पत्नी भी होती हैं। वे बोलती हैं पारिजात फूल लेकर आओ तो वे इन्द्र से लड़ाई करते हैं, पारिजात पेड़ लेकर आ जाते हैं पूरा। तो क्या ऐसा भी होता है? फिर हम पाते हैं, किसी ने तपस्या की, वो पत्नी बन गई। तो हमारे मन में भी अभिलाषा होती है, "क्या ऐसे भी होता है?"

फिर हम सर्वोत्तम लीलाएँ श्रवण करते हैं कि जैसे भगवान् तो जैसे किसी के बंधने में भी आते, पर यशोदा मईया..., राधा दामोदर लीला। यशोदा मईया उन्हें बाँध देती हैं, अपने प्रेम में, अपने वात्सल्य प्रेम में। यह जो प्रेम है, यह चौथी श्रेणी का है। पाचँवीं और सबसे उत्तम श्रेणी है - 'कांता भाव'।

कांता भाव, गोपीभाव में हम पढ़ते हैं, जो श्रुति हैं, personified forms of the Śrutis यानि की वेदों का, the personified forms of the Vedas... वो तपस्या करती हैं गोपीभाव प्राप्त करने के लिए। तो हम यह सोचते हैं, हमें पता चलता है कि गोपीभाव प्राप्त करना सर्वश्रेष्ठ प्रतीत होता है। कोई अगर प्राप्त कर सकता है, तो इसका मतलब हम भी प्राप्त कर सकते हैं।

फिर हम पाते हैं, लक्ष्मी देवी तक कामना करती थी गोपी बनने की। तो मतलब की कामना की जा सकती है। और कामना की सिद्धि भी होती है अगर सही रुप से साधना की जाए, और सिद्धि नहीं होती यदि सही रुप से साधना न की जाए। श्रुतियों में हम देखते हैं, श्रुति सही रुप से साधना करती हैं तो उनको क्या प्राप्त होता है? सिद्धि प्राप्त होती है, सफलता प्राप्ति, और वो गोपियाँ बन पाते हैं, और लक्ष्मी देवी..., क्योंकि सही रुप से साधना नहीं करती...।

इच्छा होना और साधना करना - यह दोनों अलग विषय हैं। और एक चीज़ होती है कि इच्छा ही न होना। अगर किसी की इच्छा ही नहीं हुई है, तो उसे कुछ प्राप्त नहीं होगा।

"साधन विना साध्य-वस्तु कबहु नाहि मिले
कृपा करि कह, राय, पाबार उपाय"

(श्री श्री चैतन्य चरितामृत् मध्य लीला ८.१९७)

यह चैतन्य चरितामृत् में बताया गया है। साधना किए बिना साध्य वस्तु कभी नहीं मिल सकती। तो सही साधना की आवश्यकता है। हम जान पाते हैं कि वैकुण्ठ के ऊपर भी गोलोक है। गोलोक में श्रीकृष्ण के साथ अनेक रसों में सम्बन्ध हो सकता है। उसके बाद हम पाते हैं कि हमारे अन्दर कामना होती है कि मैं कृष्ण की सबसे अंतरंग रूप से सेवा कर सकूँ। तो हम सोचते हैं कि, "हे कृष्ण, मुझे अपनी सेवा में लगाओ।" हरे कृष्ण महामंत्र को फिर हम रुचिपूर्वक करना शुरु करते हैं। "हे कृष्ण, मुझे अपनी सेवा में लगाओ। हे राधारानी, मुझे अपनी सेवा में लगाओ।"

फिर हम थोड़ा और अगर ढंग से सोचें तो राधा कृष्ण को बोल रहे हैं, "अपनी सेवा में लगाओ", तो हम पूछेंगे की हम कब-कब सेवा में लगने के लिए हम बोल रहे हैं भगवान् को। जब-जब के लिए बोलेंगे, वे तब-तब लगाऐंगे। और हम कृष्ण को बोल रहे हैं हमे सेवा में लगाओ, ठीक है- वे गोपी बना कर भी लगा सकते हैं, सखा बनाकर भी। पर हम बोलेंगे, "नहीं, हम माधुर्य भाव में सेवा करना चाहते हैं।" ठीक है। आप माधुर्य भाव में सेवा करो। पर हम जब ग्रंथों के माध्यम से..., यह तो वेदों में प्राप्त होता है कि श्रुतियों ने साधना की और वे गोपियाँ बन गई। परंतु वेदों में मंजरी भाव के ये deep रहस्य मालूम नहीं होते। वेदों में मंजरी भाव है, पर बहुत गुप्त रूप से है। मैं आपको दिखाऊँगा कैसे है। परंतु जो deep रूप से मंजरी भाव है, वो षड् गोस्वामियों के ग्रंथों में है।

षड् गोस्वामी, अष्टगोस्वामी कौन हैं? वे ही मूल मंजरियाँ हैं। अष्टगोस्वामी ही मूल मंजरियाँ हैं, अपने बारे में वे ही तो बता सकती हैं सबसे ज़्यादा, और कौन बताएगा? तो इसलिए जो हमारे, गौड़ीय वैष्णव जो हम हैं, तो हमारे मूल आचार्य कौन हैं? हमारे मूल आचार्य कौन हैं? षड् गोस्वामी। और कोई आचार्य नहीं है। कोई आचार्य नहीं है, कोई प्रभुपाद नहीं है। एक ही हैं प्रभुपाद - 'रूपगोस्वामी प्रभुपाद'। एक ही प्रभुपाद हैं। तो हम इन प्रभुपाद के आनुगत्य करते हैं। क्यों? क्योंकि यही तो मंजरी हैं। अगर हम, जो साधना है, उसमें सिद्धि कभी मिलेगी ही नहीं, जब तक सही रूप से आनुगत्य नहीं होगा। आनुगत्य तो भक्ति साधना का प्राण है..., आनुगत्यमयी जीवन। बिना आनुगत्य के प्राप्ति नहीं होगी। तो हमारे जो मूल आचार्य हैं मंजरी भाव के, वे षड् गोस्वामी हैं।

अब हम हरिनाम कर रहे हैं, हम बोल रहें हैं, "राधा-कृष्ण, मुझे अपनी सेवा में लगाओ", पर हम जान पाते हैं कि कई सेवाएँ तो ऐसी होती हैं, जो ललिता-विशाखा भी नहीं कर पाती सखियाँ। तो फिर प्रश्न उठता है, कि सेवा में लगाओ कह रहे हैं, कई सेवा ललिता-विशाखा नहीं कर पाती पर कोई और कर पाता है। उनको और भी आनन्द प्राप्त होता है। अभी तक तो हमने यही सुना था कि गोपियाँ का सर्वश्रेष्ठ है

भगवान् से सम्बन्ध, तो अब पता चला- नहीं, नहीं, नहीं, नहीं। इससे भी गूढ़ सम्बन्ध होता है मंजरियों का। फिर हम हरिनाम से प्रार्थना करते हैं कि, "हे राधा कृष्ण, मुझे अपनी सेवा में लगाओ और वो भी २४*७... २४*७, चौबीस घण्टे मुझे अपनी सेवा में लगाओ।" उस समय भी सेवा में लगाओ जब आप राधा-कृष्ण विलास कर रहे हो, उस समय भी। उस समय सेवा सखियाँ नहीं कर सकती, सखा नहीं कर सकते, वात्सल्य के रस में तो गंध भी नहीं होती, इस माधुर्य रस की।

तो अब हम पाते हैं कि मंजरी भाव सबसे सर्वश्रेष्ठ है। अब सर्वश्रेष्ठ तो है, पर यह मिलेगा कैसे? यह मिलेगा कैसे?? शास्त्रों में तो अनादि काल से है कि गोपियाँ हैं, और राम भगवान् के समय पर भी दंडकारण्य के जंगल में ऋषियों ने देखा..., आकर्षित..., सोचिए राम में ही इतना आकर्षण है, सोचिए। तो कृष्ण में कितना आकर्षण होगा। राम को देखते ही वो हो गए कि, "आप हमें अपनी भार्या बना लो।" उन्होंने बोला, "ऐसे तो अभी नहीं कर सकता। कृष्ण रूप में जब मैं आऊँगा, तो आप को यह सौभाग्य प्राप्त होगा।" तो यह साधना तो अनादि काल से है, गोपियाँ बनने की साधना।

परन्तु चैतन्य चरितामृत् में बताया गया है कि महाप्रभु स्वयं कहते हैं,

"युगधर्म प्रवर्तन हय अंश हइते
आमा विना अन्ये नारे ब्रज प्रेम दिते"

(श्री श्री चैतन्य चरितामृत् आदि लीला ३.२६)

मेरे बिना यह कोई दे ही नहीं सकता। यह महाप्रभु को स्वयं आकर देना पड़ता है..., स्वयं आकर। महाप्रभु के बिना... अब ये महाप्रभु कौन हैं ?? महाप्रभु हैं राधाकृष्ण का युगल रूप। ये भगवान् जो हैं, यह जो रस आस्वादन है ये खुद भी करना चाहते हैं क्योंकि इतना आस्वादनीय है। राधा भाव आस्वादन श्रीकृष्ण करना चाहते हैं, ठीक बात है..., परंतु उसमें इतना चमत्कारित्व नहीं है जितना मंजरी भाव में है। आपने सुना होगा कि महाप्रभु के अंग जो हैं, जोड़े जो हैं, वो खुल जाते हैं। सुना है आपने? हड्डियाँ फैल जाती हैं। नहीं सुना? ऐसा होता है कि जैसे joints हैं, ये सब खुल जाते हैं, ये लंबे-लंबे हो जाते हैं। हाथ सब लंबे-लंबे हो जाते हैं और बिल्कुल highest level of ecstasy पर होते हैं। ये किस समय पर होते हैं? जब राधा भाव आस्वादन करते हैं? नहीं।। जब मंजरी भाव आस्वादन करते हैं। तो सबसे ज़्यादा चमत्कारित्व जो है, वो मंजरी भाव के आस्वादन में है। भगवान् से भी ज़्यादा। तो भगवान् यह स्वयं भी आस्वादन करना चाहते हैं और करवाना भी चाहते हैं।

और यह जो बात है मंजरी भाव का, यह गुप्त रूप से वेदों में भी है, ध्यानचंद्र पद्धति में भी है, षड् गोस्वामी literature में भी है..., एकादश भाव, मंजरी भाव।

कई बारी लोग, क्योंकि मन में आता है कि भाई पता नहीं यह जो, हमें इस philosophy पर विश्वास नहीं है - एकादश भाव पर, सिद्धप्रणाली पर। विश्वास है या नहीं, यह तो प्रश्न गलत है वास्तव में। प्रश्न गलत क्यों है? प्रश्न इसलिए गलत है क्योंकि महाप्रभु..., जब से महाप्रभु चले गए इस धराधाम से, तब से लेकर करीब सौ (१००) वर्ष पहले तक एक ही रूप से सभी भक्तों ने सिद्धि प्राप्त की थी। एक ही भक्ति, एक ही तरीके से होती थी। गुरु के पास जाओ, जिस रस में सिद्धि प्राप्त करनी है, उस रस के मंत्र लो, वैसी साधना करो, और सिद्धि प्राप्त करो। तो महाप्रभु के बाद तो मंजरी भाव का ही प्रचार था, तो मंजरी भाव में सिद्धि प्राप्त सभी महापुरुषों ने एक ही तरीके से की है। एक किसी महापुरुष से एकादश भाव से प्रणाली ली, उस पर meditate किया, ध्यान किया, साधना की और सिद्धि प्राप्त कर ली। तो यह तो प्रश्न ही नहीं है कि मुझे यह बात agree नहीं होती..., यह बात..., यह philosophy मुझे ठीक नहीं लगती। ठीक लगना या न लगना- तो प्रश्न ही नहीं है। प्रश्न यह है कि कोई नई चीज़ आ रही है, वो ठीक है कि नहीं है? एक चीज़ तो अनादि सिद्ध है। एक चीज़ अनादि सिद्ध है, उसमें तो प्रश्न ही नहीं है। ब्रज के भक्त आप पुस्तक पढ़ते हैं, उसमें कई सौ भक्तों के, संतों के चरित्र हैं। उनमें सबका क्या है common point? सिद्ध प्रणाली। सबने अपने गुरु से सिद्ध प्रणाली ली और मंजरी भाव पर meditate किया, वो साधना की और सिद्धि प्राप्त की, कोई समस्या नहीं।

कई लोग बोलते हैं, "जी हमारे यहाँ पर सारे भाव मिलते हैं।" सारे भाव मिलते हैं तो इसका मतलब तो वैसे ही कोई परम्परा नहीं है। एक परम्परा में तो एक ही भाव मिल सकता है, क्योंकि जो मेरे गुरु ने किया, वही उनके गुरु ने किया, वही उनके गुरु ने, वही उनके गुरु ने..., भगवान् तक वो परम्परा चली आ रही है। तो एक chain है, एक भाव को follow कर रहे हैं, उसको परम्परा कहते हैं। यह जो लोग बोलते हैं, यह अज्ञान में बोल रहे हैं क्योंकि शास्त्र ज्ञान नहीं है। इसलिए बोल रहे हैं कि हमारे यहाँ सब भाव मिलते हैं। Super Market नहीं होती परम्परा। परम्परा का मतलब है एक चीज़ मिलेगी। एक। साख्य भाव की अलग परम्परा है, वात्सल्य भाव की अलग परम्परा है। आप भगवान् राम के साथ अगर सम्बन्ध बनाना चाहते हो, उसमें भी अनेक परम्पराएँ हैं। आपको मालूम है? अगर आप भगवान् राम से भी सम्बन्ध बनाना चाहते हो, तो रामानुज सम्प्रदाय में जाएँगे, तो अनेक परम्पराएँ हैं, अनेक-अनेक रसों के अनुसार। तो परम्परा का

मतलब ही होता है एक रस की प्राप्ति के लिए ही वो परम्परा है। परम्परा हमेशा भगवान् के नित्यसिद्ध पार्षदों से आती है। तो नित्यसिद्ध जो पार्षद हैं, वे एक रस में भगवान् की सेवा कर रहे होते हैं। समझ रहे हैं बात को? तो यह तो प्रश्न ही गलत, यह तो topic ही बड़ा गलत है कि हमें यह philosophy accept नहीं है। पहली बात तो philosophy तो एक ही है, बाकि सब तो fiction है, कि आप lazy होकर बैठे रहो, कोई न कोई ले जाएगा आपको मृत्यु के अंत में, यह तो fiction है। Philosophy तो एक है। हमें विश्वास नहीं है philosophy में, तो उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। आपको विश्वास न हो भगवत् धाम में, तब भी भगवत् धाम रहेंगे। आपको विश्वास न हो संतों के वाक्यों में, तब भी संतों के वाक्य भगवान् की तरह सत्य रहेंगे।

"निताईयेर चरण सत्य, ताँहार सेवक नित्य,
निताइ पद सदा करो आश"

(प्रार्थना ११ - श्रील नरोत्तम दास ठाकुर)

उनके सेवक की वाणी भी नित्य है। आपको विश्वास नहीं होता वो आपके...,

"स्वल्पपुण्यवतां राजन् विश्वासो नैव जायते"

तुम्हारे पुण्य स्वल्प हैं, इसलिए तुम्हें विश्वास नहीं है। तुम्हारे पाप हैं, तुम्हारे कर्मों में पाप हैं। कईयों की कुण्डली देखतें हैं तो साफ़ पता चलता है कि यह तो पाप की कुण्डली है। तुम्हारे कर्मों में पाप ही पाप हैं, इसलिए, *स्वल्पपुण्यवतां राजन् विश्वासो नैव जायते...* तो कहीं पर भी अगर कोई बोले कि हमारे यहाँ सब रस मिलते हैं मतलब वो वैसे ही bogus है। यह philosophy ही नहीं है। Philosophy में तो एक रस मिलेगा। यह तो fiction है। End में आपको कोई ले जाएगा। कोई शास्त्र यह अनुमोदन नहीं करता इस बात का।

साधन विना साध्य-वस्तु कबहु नाहि मिले..., महाप्रभु स्वयं बता रहे हैं। साधन बिना साध्य वस्तु कभी नहीं मिलेगी। साधन तो करने पड़ेंगे। ब्रज के भक्त में क्या देख रहे हैं हम? साधन किए हैं सबने।

अब यहाँ पर यह ग्रंथ है - सनत् कुमार संहिता। इसमें नारदजी सदाशिव से पूछते हैं कि, "हे गुरु, हे भगवान्, आपने मेरे कई प्रश्नों के उत्तर बताए हैं।" नारद के भी प्रश्न होते हैं! उसके बाद उनको उत्तर..., "आपने बताए हैं, वो बात तो ठीक है, मैं satisfied हूँ, पर इसके ऊपर भी एक बहुत ऊँची बात है, क्या है? पर अब मेरी इच्छा है, सबसे श्रेष्ठ

पथ जो है - रागमार्ग भजन, उसके बारे में मैं सुनना चाहता हूँ।" सब प्रश्न उत्तर हो गए उसके बाद भी श्रेष्ठ मार्ग..., उसके पहले comment नहीं करना चाहिए, पहले सुनना चाहिए कि यह रागमार्ग क्या है? यह है सनत् कुमार संहिता। फिर सदाशिव ने बोला नारद को, "हे ब्राह्मण्, पूरे संसार का भला करने के लिए तुमने यह बहुत ही सुंदर प्रश्न पूछा है। इससे संसार का भला होगा। हालांकि ये बहुत गूढ़ secret है, छुपी हुई वस्तु है, "रहस्य" है, परंतु फिर भी मैं तुम्हें बताऊँगा।"

जो श्रीकृष्ण की गोपियाँ हैं, वे परकीय रस में हमेशा उनकी प्रेममय सेवा करती हैं और लीलारस आस्वादन करती हैं। तो साधक को, स्वयं को, एक, अपने आपको गोपी के रूप में ध्यान करना चाहिए और समझना चाहिए कि मैं बहुत सुंदर अंग से गठित हूँ, और एक सुंदर युवती हूँ। और हर प्रकार के गुणों में ज्ञान है और श्रीकृष्ण को बहुत प्रिय हूँ परंतु श्रीकृष्ण के साथ निजी रूप से आस्वादन नहीं चाहती। मंजरी भाव सनत् कुमार संहिता में भी है। पर श्रीकृष्ण के साथ निजी रूप से आस्वादन नहीं चाहती हूँ, राधा की सखी हूँ और हमेशा राधा की सेवा करने में रत हूँ और राधा के प्रति ज़्यादा प्रेम है, कृष्ण के प्रति कम है, राधा के मुकाबले। अन्य जो सम्बन्ध होते हैं, उनका कृष्ण के प्रति रति होती है। यह है भावोल्लास रति, यह राधारानी के प्रति रति है।

अन्य रसों में श्रीकृष्ण की सेवा की जाती है। इसमें श्रीकृष्ण सेवा करते हैं। वे निजी संग कृष्ण का नहीं चाहतीं, क्योंकि वे अदभुत् सेवारस का आस्वादन करके, राधा-कृष्ण युगल की सेवा का आस्वादन करके पूर्ण रूप से संतुष्ट हैं। जब तक पूर्ण रूप से संतुष्टि नहीं मिलेगी, तो जब जैसे ही हम अपने से ऊपर देखेंगे कोई चीज़, हम कहेंगे, वो मुझे मिल जाए। नहीं। ये "पूर्ण" रूप से संतुष्ट हैं। श्रीकृष्ण राधाभाव..., अपनी जिस हद तक जा सकते थे, सारी हद तक नहीं जा सकते श्रीकृष्ण कि राधाभाव का आस्वादन कर लें..., क्यों? क्योंकि राधाभाव तो बढ़ता रहता है। आस्वादन कैसे करोगे आप कोई चीज़, जो हमेशा बढ़ती रहती है, निरंतर वर्धनशील है। तो श्रीकृष्ण ने भी राधारानी का भाव आस्वादन करने की चेष्टा की थी, पूरा राधाभाव आस्वादन नहीं कर पाए थे। राधाभाव असीमित है। असीमित चीज़ को कोई भी चीज़ सीमा में बद्ध नहीं कर सकती, "मैंने कर लिया", अच्छा! आगे बढ़ रहा है फिर..., नहीं कर सकते। तो श्रीकृष्ण ने अपनी सारी हदों तक जाकर राधाभाव आस्वादन किया परंतु उसके बाद भी क्या इच्छा हुई उनकी? मंजरी भाव रस का आस्वादन करने की। तो यह इतना श्रेष्ठम् भाव है। यह selflessness की height है..., इससे ऊँचा selflessness नहीं है, मंजरीभाव।

तो बताया गया है साधक को ब्रह्म मुहूर्त में, पूरा अष्टकालीन लीला दिन-रात...,

"बाह्य अन्तर इहार दुइतो साधन, बाह्य-साधकदेहे करे श्रवण कीर्तन।
मने-निज सिद्धदेह करिया भावन, रात्रिदिने करे राधा कृष्णेर स्मरण, सेवन।।"
(श्री श्री चैतन्य चरितामृत मध्य लीला २२.१५६-१५७)

तो यह करना चाहिए। नारद ने बोला कि, "मैं अब अष्टकाली लीला के बारे में सुनना चाहता हूँ।" अब पहले एक बात समझ आ गई कि सबसे श्रेष्ठ मंजरी भाव है। उसके बाद पता चला कि शास्त्रों में भी ऐसी साधना, ऐसा कुछ है। अब नारद ने बोला, "यह तो आपने बता दिया, भाई कि हाँ यह सबसे श्रेष्ठ है, पर इसे मैं करुँगा कैसे? यह तो बता दिया श्रेष्ठ है, अब मैं कैसे करुँ?" इसमें deeply बताया गया है, "अब मैं वास्तव में अष्टकालीन लीला के बारे में सुनना चाहता हूँ। क्योंकि जब मैं अष्टकालीन लीला के बारे में सुनूँगा ही नहीं, तो मानसिक सेवा कैसे करुँगा?" जायज़ प्रश्न है न? बोल रहे हैं अपने आप को..., *रात्रि-दिने कोरे ब्रजेर...* "अरे रात्रि-दिने तो करुँ, पर मैं करुँ कैसे? वे करते क्या हैं मुझे क्या पता?" तो नारद कह रहे हैं कि, "I want to hear अष्टकालीन लीला। मैं सुनना चाहता हूँ यह अष्टकालीन लीला क्या होती है। तो उसको सुने बिना तो मैं मानसिक सेवा कर ही नहीं सकता।"

तो कोई भी व्यक्ति अगर मानसिक सेवा या गोपियों का आनुगत्य करना चाहता है, तो सबसे पहले उसको अष्टकालीन लीला सुननी पड़ेगी। *रात्रि दिने कोरे ब्रजे कृष्ण सेवन...,* कैसे होगा? दिन में भी नहीं होगा, रात्रि का तो छोड़ दो। स्वप्न में भी नहीं होगा कभी। तो अष्टकालीन लीला सुनना इतना महत्वपूर्ण है। और कई संस्थाओं में देखा जाता है कि 10th canto..., सुबह भागवतम् Class में आते हैं तो गुरु रुकवा देते हैं, "नहीं-नहीं-नहीं, 10th canto नहीं सुनना।" अरे, आप वाकई में गौड़ीय वैष्णव हो क्या? कुछ आचार्यों से मेरी बात भी हुई, वो कहते हैं, "हमने आज तक षड् गोस्वामियों का कोई ग्रंथ नहीं पढ़ा।" तो ज़रुर आपको कुछ प्राप्त होगा? कोई ग्रंथ नहीं पढ़ा, कोई अष्टकालीन लीला कभी नहीं पढ़ी, मुझे clear बोल रहे हैं।

और..., एक भक्त हैं, वो राधाकुण्ड में आए थे, full time, उसी मंदिर से। उस मंदिर से आए तो उन्होंने उन आचार्य जी से बोला कि, "भाई, मैं मंजरी बनना चाहता हूँ, मैं मंजरी रुप में स्मरण करना चाहता हूँ, तो अगर आप मुझे इसमें सिद्धि करा दो तो मैं कही नहीं जाता।" उन्होंने बोला, "भाई, मैं तो अभी तक अपने को महाप्रभु का दास मानता हूँ, कृष्ण भाव में दास मानता हूँ।" तो फिर ४० साल साधना करने के बाद उनको ये वाली understanding भी clear नहीं हुआ, तो हमको आपको आनुगत्य करके कैसे कुछ clear होगा कभी भी? समझ रहे हैं बात को?? यह बड़े शोक का विषय है।

जैसे हमारे गुरुदेव ने बोला, हमने last बारी सुनाया था, कि कितना दुर्भाग्य का विषय है, महाप्रभु का आनुगत्य करके तुम महाप्रभु को मानते नहीं। इस सम्बन्ध में मैं आपको एक और बात बताऊँगा। अब ये बात चली तो पता चल गया कि मंजरी भाव श्रेष्ठ है। अब यह मिलेगा कैसे? प्रश्न तो वही का वही है, ये सब बातें भी हो गईं, अब यह मिलेगा कैसे?

जो वेदों के परे है बात, सोचो। वेदों के परे तो कुछ नहीं है? Personified form of the Vedas जो हैं, वो हद से हद कहाँ तक जा पाते हैं? गोपीभाव तक। मंजरी भाव तो वेदों से भी परे है, उसकी प्राप्ति। तो महाप्रभु जब इस धराधाम से अप्रकट होने वाले थे, उससे पूर्व महाप्रभु अद्वैताचार्य से मिलें, और अद्वैताचार्य को बोला कि, "मैं आपके बुलावे पर यहाँ आया हूँ। परंतु मेरा अभी एक कार्य शेष रह गया है।" यह हमें पता चलता है कवि कर्णपूर द्वारा लिखा हुआ एक ग्रंथ है - चैतन्य चंद्रोदय नाटक, उसमें यह बात प्राप्त होता है। महाप्रभु ने बोला कि, "मेरा अभी भी एक कार्य शेष रह गया है। जो मेरे सम्प्रदाय में मेरे आश्रित जन होंगे, जो मेरे आश्रित जन हैं और जो मेरे आश्रित जन होंगे, उनके ऊपर मैं विशेष कृपा करना चाहता हूँ, मैं उन सबको मंजरीभाव आस्वादन देना चाहता हूँ। तो तुम मुझसे यह वर माँग लो, क्योंकि मैं तुम्हारे कहने पर यहाँ आया हूँ।" कितने Merciful हैं न? माँगलो मुझसे। ok..! अद्वैताचार्य, "ok..! ठीक है।" तो आप..., इसके अंदर पर यह एक line में बहुत गंभीरता है - "जो मेरी सम्प्रदाय में मेरे आश्रित जन होंगे।"

"ठाकुर वैष्णव-पद, अवनीर सम्पद, शुनो भाइ हइया एकमन,
आश्रय लइया सेई भजे, तारे कृष्ण नाहि त्यजे, आर सब मरे अकारण।"
(प्रार्थना १७ - श्रील नरोत्तम दास ठाकुर)

'आश्रय लइया सेइ भजे', जो आश्रय लेकर भजन करता है। भक्ति का पहला step क्या है? (सद्गुरु चरणाश्रय) गुरु का मतलब सद्गुरु ही होता है, जो सद्परम्परा से होता है, यह बात को पहले याद रखिए, confusion कभी नहीं होगी फिर। तो पहले सद्परम्परा से जुड़ें, सद्गुरु का आश्रय लेना होगा। *'आश्रय लइया सेइ भजे'*, जो आश्रय लेकर भजन करता है, उसका *'तारे कृष्ण नाहि त्यजे'*, उसको कृष्ण कभी नहीं त्यागते। *'आर सब मरे अकारण'*- और सब अकारण मरते हैं, बिना कारण के मरते हैं।

"तो जो मेरे सम्प्रदाय में आश्रित होकर भजन करेंगे, उनको मैं मंजरी भाव, सबको अभी भी दे रहा हूँ, और सबको दूँगा। यह मेरा एक कार्य शेष रहा गया है, यह तुम मुझसे वर माँग लो।", अद्वैताचार्य को बोल रहे हैं। अद्वैताचार्य ने वर माँग लिया और उसके बाद

भी, "*एकटुक प्रश्न होए..., एकटुक निवेदन और...,* एक निवेदन और है।" महाप्रभु को बोला कि, "महाप्रभु, इससे श्रेष्ठ तो जीवों के लिए कुछ हो ही नहीं सकता कि उनको मंजरी भाव आस्वादन प्राप्त हो जाए। I agree! I agree!" महाप्रभु ने बोला, "What else do you want then?? कि लागबे?" तो महाप्रभु को अद्वैताचार्य ने निवेदन किया कि, "मेरा यही निवेदन है कि जैसे आप सबको मंजरी भाव आस्वादन दे रहे हैं, आप कृपा करके अपनी चरण सेवा भी साथ में ही नित्य प्रदान करें।" तो अद्वैताचार्य की करुणा की वजह से बद्ध जीव को मंजरीभाव आस्वादन भी प्राप्त हुआ, साथ में महाप्रभु की direct सेवा भी प्राप्त हुई। यह चैतन्य चंद्रोदय नाटक में बताया गया है, कवि कर्णपूर द्वारा। यह..., उसी में बताया जा रहा है कि ये कैसे होगा यह आस्वादन, जब महाप्रभु की लीला में सेवा करेंगे। यह बिल्कुल 'जात स्मर' की तरह..., 'जात स्मरण' समझते हैं? जब पिछले जन्म का स्मरण होता है, थोड़ा-थोड़ा। होता है न? जैसे याद आ रहा है कि, "मैं उस जन्म में था, Bombay में जन्म लिया था, १९४२ में मैं यह था।" ऐसा होता है न? उसी प्रकार से - "मैं मंजरी हूँ", इस प्रकार से महाप्रभु की लीला में रहेगा - "जात स्मर", पढ़ा हुआ है आप लोगों ने ग्रंथों में? पिछले जन्म में होता है न स्वप्न सा होता है, इस प्रकार का महाप्रभु की लीला में आस्वादन रहेगा।

महाप्रभु की जो लीला है, वो साधक भाव की लीला है। महाप्रभु के पार्षद को साधक-सिद्ध पार्षद कहा जाता है..., हैं सिद्ध पर फिर भी साधक भाव में हैं। और जो ब्रज में होते हैं, वे हैं, सिद्ध-सिद्ध पार्षद। वैसे सिद्ध ही, यहाँ साधक-सिद्ध। हैं सिद्ध पर साधक भावना रखते हैं कि, "मैं साधक हूँ", यह भावना रखते हैं। तो ये गूढ़ रहस्य हैं भक्ति के। और ये सब गूढ़ रहस्य के लिए क्रांति होनी आवश्यक है। सही साधना, सही कर्म करना पड़ेगा, सही कर्म से जुड़ना पड़ेगा।